नवोदित धार्मिक संस्थाएं : मार्क्सवादी दृष्टिकोण

"मनुष्य धर्म का निर्माण करता है, धर्म मनुष्य का निर्माण नहीं करता। धर्म मनुष्य की स्व-चेतना व स्व-प्रतिष्ठा है, ऐसे मनुष्य की जो अभी तक अपने आपको जान नहीं पाया है, या फिर से भटक गया है। किंतु मनुष्य कोई अमूर्त प्राणी तो है नहीं जिसने दुनिया के बाहर पड़ाव डाल रखा हो। मनुष्य राज्य, समाज की दुनिया ही मनुष्य है। यह राज्य, यह समाज धर्म को- एक प्रतिलोमित (उल्टी लटकी हुई) जगत चेतना को उत्पन्न करते हैं क्योंकि वे स्वयं भी एक प्रतिलोमित जगत ही है। धर्म इस जगत का सामान्य सिद्धांत है, इसका सर्वज्ञान गुटका है, आम रूप में इनकी तर्कणा है तथा इसका आध्यात्मिक कीर्ति शिखर है। धर्म इस जगत की उमंग, इसकी नैतिक स्वीकृति, इसका रहस्यमय सम्पूरक, सांत्वना व पापमोचन का इसका सार्वत्रिक स्रोत है। यह मानवीय सारतत्व का भव्य काल्पनिक मूर्त रूप है, क्योंकि मानवीय सारतत्व की वास्तविक यथार्थता नहीं होती। धर्म के खिलाफ संघर्ष इसलिए परोक्ष रूप से उस जगत के खिलाफ बन जाता है, धर्म जिसकी आध्यामिक सुरभि होता है।

'' धार्मिक व्यथा एक साथ वास्तविक व्यथा की अभिव्यक्ति तथा वास्तविक व्यथा का प्रतिवाद दोनों ही है। धर्म उत्पीड़ित प्राणी की आह (उच्छ्वास) है, निर्दय संसार का मर्म है तथा साथ ही निरुत्साह परिस्थितियों का उत्साह (उमंग) भी है। यह जनता की अफीम है।

" जनता के प्रतिभासिक (अवास्तविक) सुख के रूप में धर्म के उन्मूलन का अर्थ है उसके वास्तविक सुख की मांग करना। मौजूदा हालात के सम्बंध में भ्रमों का परित्याग करने की मांग उन हालात का परित्याग करने की मांग करता है जिनके लिए भ्रम जरूरी बन गये हैं। इसलिए धर्म की आलोचना भ्रूण रूप में आंसुओं की घाटी, धर्म जिसका प्रभामंडल है, की आलोचना है।" (कार्ल मार्क्स, हेगेल के न्याय दर्शन की समालोचना का प्रयास : भूमिका, जोर मूल में)

गायत्री परिवार, महर्षि वैदिक विश्वविद्यालय, संत निरंकारी मण्डल, श्री सथ्य सांईं समिति, आर्ट ऑफ लिविंग, ओशो कम्यून इंटरनेशनल, राधा स्वामी सत्संग व्यास, दिव्य योग मंदिर ट्रस्ट इत्यादि उन धार्मिक संस्थाओं में प्रमुख हैं जो आजकल खूब फल-फूल रही हैं। महर्षि योगी, बाबा हरदेव, सथ्य श्री सांईं बाबा, श्री श्री रविशंकर, मास्टर गुरिंदर सिंह ढिल्लन, आशाराम बापू, रामदेव इन संस्थाओं के प्रमुख हैं। गायत्री परिवार के संस्थापक पं . श्री राम शर्मा आचार्य और ओशो कम्यून इंटरनेशनल के संस्थापक रजनीश, की मृत्यु के बाद ट्रस्ट के रूप में समूह ही इनका संचालन करते हैं।

इन संस्थाओं के पास अरबों रुपये की चल-अचल सम्पत्ति है। इन संस्थाओं व संतों की भक्त संख्या भी अच्छी खासी है। ये संस्थान कॉलेज, स्कूल, रिसर्च सेंटर, रक्तदाता संस्थाएं, प्रकाशन संस्था न और जनकल्याणकारी संस्थाओं का संचालन करते हैं। साथ ही साबुन, तेल, चायपत्ती, फेस पैक, दवाएं, कपड़े समेत अच्छी खासी उपभोक्ता सामग्री का उत्पादन व बिक्री भी ये करते हैं।

अपने भक्तगणों की संख्या में इजाफा करने के लिए ये संस्थायें आश्रम बनाने, सत्संग, शिवर आयोजितकरने, पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों-पर्चों का तो धड़ल्ले से इस्तेमाल करते ही हैं। इसके अलावा दूरदर्शन, सेटेलाइट चैनलों, आडियो-वीडियों कैसेट्स, सी.डी. के साथ-साथ इंटरनेट वेबसाइट जैसे अत्याधुनिक प्रचार माध्यमों का भी धड़ल्ले से इस्तेमाल करते हैं। इतना ही नहीं ये संत असेम्बली ऑफ ग्लोबल रिलीजन्स (**Assembly of global religions**) जैसे अंतर्राष्ट्रीय मंचों में भी एकजुट हैं। अपने अंतर्राष्ट्रीय सम्बंधों का इस्तेमाल ये अपने भक्तों को रिझाने के लिए बखूबी करते हैं।

समाज के लगभग सभी वर्गों-तबकों में इन संतों व इनके द्वारा संचालित संस्थाओं का प्रभाव है। उच्च वर्ग व उच्च मध्य वर्ग के लिए जहां एक ओर 'ओशो कम्यून इंटरनेशनल' और 'आर्ट ऑफ लिविंग' जैसे पांचतारा भक्ति-मुक्ति के केन्द्र हैं वहीं बहुसंख्यक आबादी के लिए रामदेव से लेकर जिला-शहर स्तर के संतों-आश्रमों का जमावड़ा है। आम जनता के इन संतों का सान्निध्य उच्च वर्ग खास तौर पर राजनीतिज्ञ भी पाते रहते हैं ताकि जनता के भ्रमों को बढ़ावा मिले और भक्तों के वोट भी सध सकें।

पिछले 15-20 सालों में इन संतों व इनके विचारों की स्वीकृति आम जनता के बीच बढ़ी है। आजकल के सबसे चर्चित संत रामदेव का उदय तो महज आठ सालों का है। रामदेव ने 1995 में कनखल (हरिद्वार) में दिव्य योग मंदिर ट्रस्ट की स्थापना की और 2005 आते-आते इनके चेलों की गिनती लाखों में पहुंच गयी। जहां एक ओर परम्परागत वैश्विक धर्मों का पराभव दिखायी दे रहा है वहीं ये नयी धार्मिक संस्थायें पुष्पित पल्लवित हो रही हैं। ईसाई, इस्लाम व हिंदू धर्म समेत सभी धर्म अपने सारतत्व को क्रमशः विलुप्त करने को बाध्य होते जा रहे हैं। इन परम्परागत धर्मों के प्रमुख झंडाबरदार कर्ता-धर्ता व संस्थाएं धर्मग्रंथों में लिखी बातों को गलत मानने को बाध्य हो रहे हैं या फिर विज्ञान की विभिन्न शाखाओं के विकासक्रम के अनुसार उनकी व्याख्या करने को बाध्य हो रहे हैं।

दूसरी ओर भारत में विगत दो दशकों में इन संतों ने मेहनतकश जनता के विभिन्न वर्गों में अपना आधार विस्तृत किया है। इस परिघटना का विश्लेषण, पारम्परिक विश्व धर्मों के सम्बंध व समाज में मौजूदा भौतिक आधार पर चर्चा करने से पहले इनके कुछ प्रमुख प्रतिनिधिक संतों व संस्थाओं की चर्चा आवश्यक है।

■ **गायत्री परिवार** : इसके संस्थापक पं. श्री राम शर्मा आचार्य थे। यूं तो इसका आजादी के आंदोलन के दौरान से ही इतिहास रहा है, परंतु 'शांतिकुंज' (हरिद्वार) की 1972 में स्थापना के साथ ही इसके बढ़ते प्रभाव को देखा जा सकता है। इस संस्था का मानना है कि स्वस्थ शरीर, साफ दिमाग व नागरिकता बोध से लैस समाज के द्वारा ही मानवता का पूर्ण रूपांतरण प्राप्त किया जा सकता है। विश्व देश, विश्व भाषा, विश्व संस्कृति, विश्व धर्म की स्थापना कर 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना का प्रचार प्रसार संस्था का केन्द्रीय लक्ष्य है। गायत्री मंत्र व यज्ञ, आर्ट ऑफ लिविंग, संजीवनी विद्या द्वारा यह परिवार इस लक्ष्य की प्राप्ति के बारे में सोचता है। इनकी 'युग निर्माण योजना' का लक्ष्य है सच्ची वेदान्तिक भावना से लैस व्यक्ति। परिवार व समाज का विकास करना। ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान, देवसंस्कृति विश्वविद्यालय, वैज्ञानिक शोध संस्थान गायत्री परिवार के प्रमुख शैक्षणिक संस्थान हैं। गायत्री परिवार का आधार मुख्यतः हिन्दी भाषी सवर्णों के बीच है।

■ **महर्षि योगी** : इनका आधार मूलतः मध्य प्रदेश में है और प्रदेश सरकार के अभूतपूर्व सहयोग से महर्षि वैदिक विश्वविद्यालय, महर्षि इंस्ट्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट जैसी संस्थाओं के माध्यम से ये 'नए मानव' की सृष्टि करना चाहते हैं।

■ **श्री सथ्य साईं समिति** : सथ्य नारायण राजू 1926 में आंध्र प्रदेश में पैदा हुए और 20 अक्टूबर 1940 को इन्होंने खुद को अवतार घोषित किया और कहा कि ये साईं बाबा हैं। इन्होंने प्यार ही एकमात्र धर्म है, मानवता ही जाति है, दिल की भाषा ही भाषा है तथा ईश्वर सर्वव्याप्त है का नारा बुलंद किया। साईं बाबा का कहना है 'मैं भगवान हूं और तुम भी भगवान हो तुममें और मुझमें सिर्फ इतना ही फर्क है कि मैं इसके प्रति सचेत हूं और तुम पूरी तरह अचेत हो।' 'मैं तुम लोगों के हृदय में प्रेम का दीप प्रज्वलित करने आया हूं। मैं देखूंगा कि यह दीप दिन-ब-दिन ज्यादा कांति से चमक रहा है। मैं किसी धर्म की एवज़ में नहीं आया हूँ।'

श्री सथ्य साईं समिति को प्रंसाथि काउंसिल द्वारा संचालित किया जाता है और इसका दावा है कि इसकी शाखाएं 170 देशों में हैं। समिति आध्यात्मिक कार्यकलापों के साथ-साथ स्कूल, ब्लड बैंक, मेडिकल कैम्प, वृद्धों के शिविर, ग्राम्य विकास कार्यक्रमों के अलावा एक रेडियो स्टेशन का भी संचालन करती है। इसका आधार मुख्यतः दक्षिण भारत में है।

■ **राधास्वामी सत्संग व्यास** : इसकी स्थापना 1891 में एक रजिस्टर्ड मुनाफा न कमाने वाली चैरिटेबल संस्था के रूप में हुई थी। गुरूओं की परम्परा में वर्तमान में इसके प्रमुख मास्टर गुरिंदर सिंह ढिल्लन (बाबा जी) हैं। संस्था संत-मत व जीवात्मा के विज्ञान की खोज का लक्ष्य रखती है। साथ ही भाईचारे व धार्मिक एकरूपता को प्रोत्साहित करना चाहती है। राधास्वामी सत्संग व्यास 'जीवात्मा विज्ञान शोध संस्थान', 'महाराजा जगत सिंह चिकित्सा राहत संस्थान' के अलावा 73 स्कूलों का (जिला पत्तन, गुजरात) संचालन करती है। संस्था अपने भक्तों को शाकाहार, मादक पदार्थों से दूर रह कर एक नैतिकता युक्त जीवन जीने व 'ध्यान' का अभ्यास लगातार मजबूत करने का संकल्प दिलाती है।

■ **योग वेदान्त आश्रम** : आशुमल उर्फ आसाराम बापू ने एक लम्बे आध्यात्मिक जीवन के बाद 1971 में अहमदाबाद में पहले आश्रम की स्थापना की। संस्था का उद्देश्य ध्यान, योग, आध्यात्म, नैतिक शिक्षा और स्वास्थ्य शिक्षा के जरिये व्यक्ति को वास्तविक सुख, शांति के मार्ग पर लाना है। 'योग वेदान्त आश्रम', 'साईं लीला शाह जी उपचार केंद्र', 'साईं लीला शाह जी औषधि निर्माण', लुधियाना में बच्चों का स्कूल, वृद्धाश्रम के अलावा सचल आयुर्वेदिक चिकित्सालय, जनजाति कल्याण कार्यक्रम, नशा उन्मूलन अभियान, प्राकृतिक आपदा प्रबंधन इत्यादि आसाराम की प्रमुख संस्थायें व कार्यक्रम हैं। अहमदाबाद, दिल्ली व मध्य प्रदेश के अलावा देश-विदेश में भी आसाराम के चेलों की खासी तादाद है।

■ संत निरंकारी मण्डल : संस्था की स्थापना 1929 में बाबा बूटा सिंह ने की। 'भगवान निराकार है' के नारे के साथ। फिलहाल 1980 से बाबा हरदेव इसके प्रमुख हैं। सभी दुनियावी संसाधनों-भौतिक, आत्मिक व पदार्थ-को इस तरह लेना चाहिए कि ये आखिरकार भगवान के हैं। मनुष्य को खुद को भगवान की एवज में इसका ट्रस्टी समझना चाहिए।

बिना गुरू के भगवान प्राप्त नहीं हो सकते। भगवान का अहसास हम रोजमर्रा के सामान्य कर्तव्यों का पालन करके ही कर सकते हैं। जाति, धर्म, मत, रंग व अमीर-गरीब का कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए यही निरंकारी मण्डल का प्रमुख नारा है।

संत निरंकारी मण्डल का दावा है कि उनकी 1000 शाखायें देश में तथा 200 विदेशों में हैं। इस रजिस्टर्ड धार्मिक संस्था के संचालन के साथ-साथ बाबा हरदेव दो अस्पताल, 6 पैथालॉजिकल लैब, 108 डिस्पेंसरी, एक स्कूल तथा 20 सिलाई कढ़ाई सिखाने के संस्थानों का संचालन करते हैं। ये सभी कार्य समाज कल्याण के नाम पर 'निरंकारी सेवा दल' के बैनर तले किये जाते हैं। संस्था दहेज मुक्त अंतर्जातीय, अंतधार्मिक, अंतर्सामुदायिक सामूहिक विवाह भी सम्पन्न करवाती है। संस्था का यह भी दावा है कि वह इस समय देश की सबसे बड़ी रक्तदाता संस्थानों में से एक है। शांति, अहिंसा और ब्रह्मांडीय भाईचारा कायम करना मण्डल का लक्ष्य है।

■ आर्ट ऑफ लिविंग : आधुनिक भौतिकी में उच्च शिक्षा हासिल कर चुके श्री श्री रविशंकर ने इस संस्था की स्थापना 1982 में की। 'आर्ट ऑफ लिविंग फाउण्डेशन' ने फरवरी 2006 में अपनी 25 वीं सालगिरह मनायी। फाउण्डेशन का दावा है कि इसमें 145 देशों से 25 लाख लोगों ने शिरकत की।

श्री श्री का कहना है कि 'एक असफल प्रेम प्रसंग, व्यापार में घाटा और एक करीबी प्यारे व्यक्ति को खोकर वह आध्यात्म की ओर उन्मुख हुए। रविशंकर कहते हैं 'अपनी प्रकृति से हम सभी दोस्ताना, सहकार व प्रतिपूर्ति की भावना से भरे हैं। अगर हम दोस्ताना नहीं हैं तो इसकी वजह तनाव और कामों का बोझ है।'

'जीवन के गुण का अहसास करना न कि उपकरणों का, जिस क्षण से हम इसका अहसास करना शुरू करते हैं तो हम जीवन जीने की कला सीख जायेंगे' यह फाउण्डेशन का आप्त वाक्य है।

फाउण्डेशन प्रथम चरण में शैक्षिक कार्यक्रम के जरिये व्यक्ति को आत्म विकास के द्वारा पूर्ण मानवीय क्षमतायें निखारने का कार्यभार लेता है। इस कार्यक्रम में तनाव व थकान कम करने व वर्तमान में जीने के गुर सिखाये जाते हैं।

दूसरे चरण में जिसे मानवीय कार्यक्रम कहा जाता है, में, इन 'मजबूत' व्यक्तियों को प्यार और दूसरों की चिंता करने व समाज के हितों का प्रतिनिधित्व करने की दीक्षा दी जाती है।

फाउण्डेशन का मिशन है हम उस सबको बाटें जो हमारे पास है मुंह से, शब्दों से। साथ ही फाउण्डेशन धर्म निरपेक्ष आध्यात्म की वकालत करता है।

■ ओशो कम्यून इंटरनेशनल : दर्शनशास्त्र में स्नान्तकोत्तर की डिग्री प्राप्त करने के बाद रजनीश चंद्रमोहन जैन ने जबलपुर विश्वविद्यालय में 9 सालों तक शिक्षक के रूप में कार्य किया। 1966 में शिक्षण कार्य छोड़कर मुम्बई में 'सन्यासिनों' को उपदेश देने के लिए आश्रम संचालित किया। इनमें ज्यादातर यूरोपीय सन्यासिनें थी। जनता का कोपभाजन बनकर 1974 में मुम्बई से पुणे भागना पड़ा। 1980 में रजनीश पर जानलेवा हमला हुआ और 1981 में इन्होंने भारत छोड़ दिया। अमेरिका में 60 लाख डालर में 65,000 एकड़ का आश्रम रजनीशपुरम् के नाम से बनाया गया। 1987 में पुनः पुणे लौटे और 1990 में मृत्यु के समय ओशो के देश-विदेशों में 600 केंद्र व दो लाख सदस्य थे। 27 रॉल्स रॉयस का काफिला इनकी सम्पत्ति में शामिल था। अपनी मृत्यु के बाद संस्था के संचालन के लिए 21 लोगों की नियुक्ति वे पहले ही कर चुके थे।

ओशो का कहना था कि 'अगर हमने 20 वर्षों में नये मानव का निर्माण नहीं किया तो मानवता का कोई भविष्य नहीं है। वैश्विक स्तर की इन आत्महत्याओं (महाविध्वंस) को तभी रोका जा सकता है जब एक नये प्रकार के मानव का निर्माण किया जाय'। इस नये मानव का निर्माण ओशो 'सक्रिय ध्यान' (**active meditation**) के द्वारा करना चाहते है। इनमें से बेहतरीन है 'गतिवान ध्यान' (**dynamic meditation**)। रजनीश हिंदू, जैन, बौद्ध, ईसाई व ताओ (**taoism**) धर्मों के सकारात्मक तत्वों को स्वीकार करने की बात करते हैं। 'ईश्वर हर कहीं है और हर किसी के भीतर है' यह ओशो 'कम्यून' का आप्त वाक्य है।

ऊपर हमने जिन संस्थाओं का जिक्र किया है ये कुछ प्रमुख प्रतिनिधिक संस्थायें हैं। इनके अलावा भी कई बड़ी-छोटी संस्थायें राष्ट्रीय व प्रदेश स्तर से लेकर मोहल्ला स्तर तक मौजूद हैं। इन धार्मिक संस्थाओं के मूल्यांकन व इनकी प्रकृति पर नजर डालने के लिए जरूरी है कि धर्म के विकासक्रम पर एक निगाह डाल ली जाय।

मनुष्य व प्रकृति सम्बंधी धार्मिक चिंतन की जड़ें जांगल अवस्था की संकीर्ण बुद्धि और अज्ञानतापूर्ण धारणाओं में रही हैं। पार्थिव शक्तियों के अलौकिक रूप धारण करने के विचार ने इतिहास के आरम्भिक दौर में जन्म लिया था। उस समय मानव के लिए ये प्राकृतिक शक्तियां परायी व अबोध्य थीं। ये प्रकृति की शक्तियां आदिम मनुष्य को प्रकटतः व अनिवार्यतः खुद पर शासन करती प्रतीत होती थीं। इन्हीं प्राकृतिक शक्तियों का काल्पनिक आकृतियों में प्रतिबिंबन ही ईश्वर था। और इसी बिंदु पर पहुंचकर इन रहस्मयी शक्तियों ने धर्म के रूप में सामाजिक विशिष्टता ग्रहण की। प्राकृतिक शक्तियों के मानवीयकरण द्वारा प्रारम्भिक देवताओं की उत्पत्ति हुई। सभी प्रकार के धर्म मनुष्यों के दिमाग में उन बाह्य शक्तियों के काल्पनिक प्रतिबिंब के सिवा कुछ नहीं थे, जो उनके दैनिक जीवन को शासित करती हैं। इतिहास के आरम्भ में पहले प्रकृति की शक्तियां इसी प्रकार मनुष्यों के दिमागों में प्रतिबिंबित हुई थीं। आगे के विकासक्रम में इन्हीं शक्तियों ने विभिन्न जातियों के यहां नाना प्रकार से मूर्तरूप धारण कर लिये। इन प्रारम्भिक देवताओं के क्षेत्र भी अति सीमित ही थे। एक जाति से बाहर आते ही हमें बदले हुए रूप में अन्य देवता प्रतिष्ठित दिखायी देते हैं।

धर्मों की स्थापना उन लोगों द्वारा की गयी जो जनगण की धार्मिक जरूरतों का अहसास करते थे और जिन्हें स्वयं भी धर्म की आवश्यकता का अहसास था। यानी वे स्वयं भी इन पार्थिव शक्तियों की अलौकिकता में विश्वास करते थे।

प्रकृति की शक्तियों के साथ-साथ सामाजिक शक्तियों के क्रियाशील होने पर मनुष्यों की दृष्टि में ये शक्तियां भी उतनी ही परायी तथा अबोध्य थीं जितनी स्वयं प्राकृतिक शक्तियां; और ये भी उन पर प्रकृति की शक्तियों जैसी प्रकटतः प्राकृतिक अनिवार्यता के साथ शासन करती थीं। इस समाज ने, राज्य ने, धर्म को एक प्रतिलोमित (उलटी लटकी हुयी) जगत चेतना के रूप में उत्पन्न किया। मनुष्य के लिए ये समाजिक शक्तियां भी प्रकृति की शक्तियों से कम रहस्यमयी नहीं थीं। राज्य ने इस रहस्य का हल उलटी लटकी हुयी जगत चेतना को उत्पन्न करके किया।

मनुष्य के विचार, मत व धारणाएं उसके भौतिक अस्तित्व की जरूरतों, उसके सामाजिक संबंधों तथा सामाजिक जीवन के प्रत्येक परिवर्तन के साथ बदलते रहे हैं। समाज विकास के और भी आगे की अवस्था में अनेक देवताओं के समस्त प्राकृतिक तथा सामाजिक गुण एक परम् शक्तिशाली ईश्वर में स्थानांतरित कर दिये गये। यह परम् शक्तिशाली ईश्वर अमूर्त मानव का प्रतिबिंब है। समूचे वर्गीय समाजों में धर्म सम्बंधी विचार, मत व धारणायें नये, बदले हुए रूप में मौजूद रहती हैं और आसवित होती रहती हैं। क्योंकि मनुष्य स्वयं द्वारा पैदा किये गये राज्य, उत्पादन के साधनों व आर्थिक सम्बंधों से शासित होते रहते हैं। और उनको लगता है कि परायी शक्ति उन पर शासन कर रही है। प्रतिबिंबन की जिस क्रिया से धर्म का जन्म हुआ था उसी वास्तविक आधार की मौजूदगी के कारण धर्म सभी वर्गीय समाजों में मौजूद रहता है। हां इसका स्वरूप बदला हुआ व भिन्न होता है। धर्म के विकासक्रम में ये देवता पारलौकिक रूप ग्रहण करते चले गये। अंततः आसवन द्वारा मानव मस्तिष्क में, एकमात्र परमात्मा-एकेश्वरवादी धर्मों के परमात्मा का विचार उत्पन्न हुआ।

धर्म में उसकी स्थापना के समय से ही परंपरागत सामग्री निरंतर विद्यमान रहती है। पर इस सामग्री में जो परिवर्तन होते हैं, वे वर्ग-संबंधों से, अर्थात इन परिवर्तनों को सम्पन्न करने वाले लोगों के आर्थिक सम्बन्धों से उद्भूत होते हैं।

13 वीं से 17 वीं शताब्दी तक धार्मिक नारों के तहत जितने भी धर्मसुधार आंदोलन तथा संघर्ष किये गये, वे सैद्धान्तिक पक्ष की दृष्टि से, शहरी बर्गरों व जनसाधारण तथा इन दोनों के सम्पर्क में आकर विद्रोही बने किसानों द्वारा बार-बार उठायी गयी इस मांग के अलावा कुछ नहीं थे कि पुराने धर्मशास्त्रीय दृष्टिकोण को बदली हुई आर्थिक परिस्थितियों तथा नये वर्ग की जीवन-स्थितियों के अनुरूप रूपांतरित व अनुकूलित किया जाय।

मध्य युग तक का विश्व दृष्टिकोण सारतः धर्मशास्त्रीय रहा। सामंतवाद का क्रांतिकारी विरोध समूचे मध्य युग में जारी रहा। उसने रहस्यवाद, मतांतर तथा सशस्त्र विद्रोह के अलग-अलग रूप धारण किये। इस समय सामंतवाद के विरुद्ध आमतौर पर होने वाले लगभग सभी आक्रमण, सर्वोपरि चर्च के विरुद्ध आक्रमण भी थे। चर्च, जिसके हाथों में पड़कर राजनीति तथा न्यायशास्त्र समेत समस्त विज्ञान धर्मशास्त्रीय बन चुका था।

मध्य युग के धर्मशास्त्रीय दृष्टिकोण के खिलाफ निर्णायक संघर्ष बर्गर सुधारवादी लूथर, तथा उससे कहीं आगे बढ़कर जन क्रांतिकारी मुंजर ने किया। प्रकृति विज्ञान के क्षेत्र में ब्रूनो, गैलिलियो व कोपर्निकस ने चर्च की सत्ता को चुनौती देकर प्रकृति विज्ञान की स्वतंत्रता को सुनिश्चित कर दिया। इस समय से प्रकृति विज्ञान धर्मशास्त्र से मुक्त हो गया।

प्रकृति विज्ञान की इस स्वंतत्रता ने धर्मशास्त्रीय दृष्टिकोण को पराजित कर उसके आभामंडल को झीर-झीर कर दिया। जब 18 वीं शताब्दी में पूंजीपति वर्ग ने अपनी महान व निर्णायक क्रांति-फ्रांसीसी क्रांति सम्पन्न की तब उसने धर्म के प्रश्न पर वहीं तक ध्यान दिया जहां तक वह उसके मार्ग में बाधक बना हुआ था। पुराने धर्म के स्थान पर नये धर्म की स्थापना का ख्याल तक उसके दिमाग में नहीं आया। फ्रांसीसी क्रांति ने नये विश्व दृष्टिकोण-न्यायिक विश्व दृष्टिकोण-को पैदा किया, जिसे भविष्य में पूंजीपति वर्ग का शास्त्रीय विश्व दृष्टिकोण बनना था। इस विश्व दृष्टिकोण का अर्थ था धर्मशास्त्रीय दृष्टिकोण का लौकिकीकरण। दैवीय अधिकार की जगह मानव अधिकार। धार्मिक संस्थाओं केस्थान पर राज्य।

स्वयं धर्मशास्त्रीय दृष्टिकोण के खिलाफ धर्मशास्त्रियों ने ही भीषण प्रहार किये थे और प्रकृति विज्ञान ने धर्मशास्त्रीय अवधारणाओं को खण्डित कर नये धर्मों के पैदा होने के भौतिक आधार को मूलतः नष्ट कर दिया। परन्तु हमने पहले ही कहा है कि पारम्परिक धर्मो की अंतर्भूत सामग्री में नये वर्ग संबंधों के अनुरूप परिवर्तन के साथ जनगण के बीच इनकी मान्यता बने रहने का भौतिक आधार अभी विनष्ट नहीं हुआ था।

'' परन्तु एक बात में समाज के विकास का इतिहास प्रकृति के विकास के इतिहास से मूलभूत रूप से भिन्न सिद्ध होता है। प्रकृति में-जहां तक प्रकृति पर मनुष्य की प्रतिक्रिया की उपेक्षा करते हैं-हमें केवल अंधी, अचेतन, एक दूसरे से टकराती हुई क्रिया-शक्तियां मिलती हैं, जिनकी परस्पर क्रिया के द्वारा सामान्य नियम परिचालित होते हैं। वहां जितनी भी घटना व्यापार होते हैं-चाहे वे सतह पर दिखाई देने वाली अनगिनत प्रकटतः आकस्मिक घटनायें हों, या वे चरम् परिणतियां हों जो इन आकस्मिक घटनाओं में अंतर्निहित नियमबद्धता की पुष्टि करती हैं-उनमें से कोई भी सचेतन रूप से इच्छित लक्ष्य की पूर्ति के रूप में नहीं होता है। इसके विपरीत, समाज के इतिहास में कार्य करने वाले लोग चेतना सम्पन्न होते हैं, वे सोच विचार कर या आवेग से कोई काम करते हैं, उनके कार्य का एक निश्चित लक्ष्य होता है; कोई भी चीज बगैर सचेतन ध्येय के, बगैर किसी अभिप्रेत एवं अभीष्ट लक्ष्य के नहीं होती। लेकिन यह भेद छानबीन के लिए-विशेषकर अमुक विशेष युगों तथा घटनाओं की छानबीन के लिए-महत्वपूर्ण होते हुए भी इस तथ्य को नहीं बदल सकता कि इतिहास का क्रम सामान्य आंतरिक नियमों द्वारा अधिशासित होता है। वास्तव में यहां भी सभी व्यक्तियों के सचेतन रूप से इच्छित लक्ष्यों के बावजूद सतह पर आकस्मिकताओं का ही राज दिखायी देता है। जिसकी इच्छा की जाती है, वह बिरले ही कभी-कभार होता है, अधिकांशतः अनगिनत इच्छित ध्येय आपस में टकराते हैं और एक दूसरे के मार्ग में बाधक होते हैं; या ये लक्ष्य ऐसे होते हैं जो आरम्भ से ही असाध्य होते हैं अथवा उनकी पूर्ति के साधन ही अपर्याप्त होते हैं। इस तरह इतिहास के क्षेत्र में अनगिनत व्यक्तिगत इच्छाओं और व्यक्तिगत क्रियाओं के टकराव के द्वारा एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जो जड़ प्रकृति के क्षेत्र में प्रचलित स्थिति के काफी समान होती है। कार्यों के लक्ष्य उद्दिष्ट होते हैं, पर इन कार्यों द्वारा वास्तव में जो परिणाम निकलते हैं वे उद्दिष्ट नहीं होते अथवा जब वे उद्दिष्ट लक्ष्य के अनुरूप जान भी पड़ते हैं, तो उनके अंतिम फल उद्दिष्ट से बिल्कुल भिन्न होते हैं। ऐतिहासिक घटनायें भी, इस प्रकार, समग्रतः संयोग के अधीन ज्ञात होती हैं।''

इतिहास के क्षेत्र में वस्तुतः आंतरिक अप्रकट नियमों के प्रति अज्ञानता के कारण अधिकांश जनगण इनके पीछे किसी अमूर्त आध्यात्मिक-सर्वशक्तिमान ताकत की भूमिका को स्वीकारते हैं। हालांकि वर्तमान युग में विज्ञान की विभिन्न शाखाओं के विकास ने इन नियमों की पहेली को अबूझ नहीं रहने दिया। दर्शन के क्षेत्र में फायरबाख ने भौतिकवाद की भाववाद पर विजय का मार्ग प्रशस्त किया और अंततः 1845 में मार्क्स ने फायरबाख के नये धर्म के केन्द्रीय तत्व-अमूर्त मानव की उपासना-के स्थान पर वास्तविक मानवों तथा उनके ऐतिहासिक विकास के विज्ञान की स्थापना की शुरूआत कर दी और समाज को एक नया विश्व दृष्टिकोण दिया-सर्वहारा विश्व दृष्टिकोण, मार्क्स ने इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या की। उन्होंने यह प्रमाणित किया कि मनुष्य के समस्त न्यायिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा अन्य मत, विचार व धारणायें अंततोगत्वा उसके जीवन की आर्थिक परिस्थितियों-उत्पादन पद्धति तथा उत्पाद के विनिमय की पद्धति से ही पैदा होते हैं। इस विश्व दृष्टिकोण को भविष्य में सम्पूर्ण मानवता का विश्व दृष्टिकोण बनना है। तब न तो राज्य और न ही उत्पादन के साधन व आर्थिक सम्बंध मनुष्य को शासित करेंगे। और धर्म व आध्यात्म के किन्हीं भी प्रकारों का भौतिक आधार पूरी तरह नष्ट हो जायेगा।

धर्म के इतिहास पर एक संक्षिप्त निगाह डालने के बाद अब हम अपने मूल विषय की ओर वापस लौटते हैं।

भारतीय पूंजीपति वर्ग जब सत्ता पर काबिज हुआ तब वैश्विक हालात उसके बहुत ज्यादा खिलाफ थे। न सिर्फ धरती पर ही स्वर्ग का निर्माण कर लेने का सर्वहारा विश्व दृष्टिकोण विश्व पटल पर आ चुका था बल्कि अच्छे खासे भू-भाग पर व्यवहार में भी खुद को स्थापित कर रहा था।

भारत में धर्मशास्त्रीय दृष्टिकोण की ईंटें खिसकाने की शुरूआत ब्रिटिश उपनिवेशवादियों ने की। ब्रिटिश उपनिवेशवादी भारत में जिन उत्पादन सम्बंधों (तदनुरूप शासन प्रणाली जो कि धर्म शास्त्रीय दृष्टिकोण पर आधारित नहीं थी। इसका तद्नुरूप वस्तुगत प्रभाव भारत के धार्मिक मतों-विचारों को खण्डित करने पर पड़ा) को जिस हद तक लागू करना चाहते थे उस हद तक धार्मिक, जातीय मूल्य-मान्यताओं व मतों को खण्डित करना उनकी मजबूरी थी। औपनिवेशिक हितों की पूर्ति के लिए काफी सधे हुए तरीके से इस काम को किया गया। और वहीं तक जहां तक ये औपनिवेशिक हितों में बाधक थे।

पारम्परिक धर्मशास्त्रीय दृष्टिकोण के खिलाफ अंग्रेजों के शासनकाल में भारत के मध्यम-वर्ग ने भी सुधारवादी आंदोलन किये। मगर ये आंदोलन कभी भी जुझारू तेवर नहीं अपना सके। उपनिवेशवादियों ने इन आंदोलनों की मांगों को आधार बनाकर कानून बनाये और इन भारतीय सुधारवादियों को खुद में समाहित किये रखा।

1947 से पहले ब्रिटिश तथा बाद के दिनों में भारतीय पूंजीपति वर्ग ने मध्ययुगीन धार्मिक मूल्य-मान्यताओं के खिलाफ जो संघर्ष किया वह काफी नपा-तुला रहा। ज्यादातर मामलों में इन्होंने अतीत के समाहार की रोशनी में, जनता के प्रबोधन-पुनर्जागरण आंदोलन चलाए बगैर ही ऊपर से कानून बनाकर धर्मों की धार को भोथरा किया। ईश्वरीय विधान एक लंबे कालखण्ड में भीतर ही भीतर खोखले कर दिये गये, लेकिन उतने ही जितने की माल उत्पादन, विनिमय की प्रणाली के अस्तित्व की न्यूनतम जरूरत थे।

आजादी के बाद क्रमशः पूंजीवादी विकास ने वे भौतिक परिस्थितियां उत्पन्न कीं जो धर्मशास्त्रीय दृष्टिकोण के आभामंडल को खण्डित करतीं थीं। खास तौर से 'धर्मनिरपेक्ष' पूंजीवादी भारत के निर्माण के लिए हिंदू धर्म की रूढ़ियों को निशाना बनाया गया। हिन्दू धर्म के ब्रह्मा के विभिन्न अंगों से मानव की उत्पत्ति व तद्नुरूप वर्ण-विभाजन का विचार पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली के लिए सबसे बड़ी बाधा था। सभी धर्मों, खास तौर पर हिंदू धर्म की पारम्परिक विचार सामग्री को नये वर्ग सम्बंधों व उत्पादन सम्बंधों के अनुरूप ढाल दिया गया। नये उत्पादन सम्बंधों ने धर्म, जाति व क्षेत्र के संकीर्ण दायरों को ढहा दिया। अब धर्म ने नये आर्थिक संबंधों के अनुरूप खुद को परिवर्तित कर लिया।

पूंजीवादी विकास के फलस्वरूप नये पैदा हो रहे उत्पीड़ित-शोषित वर्गों/तबकों की व्यथा को अब धर्म अपने बदले हुए रूप में अभिव्यक्ति देने लगा। 'धर्म जनता की आंसुओं की घाटी का प्रभामंडल' बना रहा। इस दौरान भौतिक तौर पर नये उत्पादन संबंधों ने समाज को वह थोड़ा-बहुत दिया भी जिससे धर्मशास्त्रीय धारणाओं को एक हद तक प्रतिस्थापित किया जा सके।

1980 आते-आते भारतीय पूंजीपति को अर्थव्यवस्था के विकास के अपने मॉडल में बदलाव लाने थे। बाद में इन बदलावों ने मेहनतकश अवाम की जीवन स्थितियों को और ज्यादा कष्टप्रद बनाया।

वैश्वीकरण, उदारीकरण की साम्राज्यवादी शोभा यात्रा में शामिल होने के साथ ही भारतीय पूंजीपति वर्ग ने 'कल्याणकारी राज्य' का चोला उतारना शुरू कर दिया। मिट्टी का तेल, खाद, बिजली, पानी, शिक्षा, स्वास्थ्य पर किया जाने वाला खर्च धीरे-धीरे खत्म किया जाने लगा। संक्षेप में कहा जाय तो भारतीय मेहनतकश और मध्यवर्ग अब बाजार की रहस्यमयी ताकतों की और ज्यादा गिरफ्त में आ गया।

सामाजिक उत्पादन व व्यक्तिगत हस्तगतकरण की अंतर्विरोधी स्थिति का खात्मा या उसके लिए किया जाने वाला संघर्ष ही इस कष्टप्रदता से जनता को मुक्ति दिला सकता था। देश-दुनिया का कम्युनिस्ट आंदोलन हाल-फिलहाल पराजित होकर नये संघर्षों की तैयारी कर रहा था। 'इतिहास का अंत', 'विचारधारा का अंत' के मुहावरे बुर्जुआ बुद्धिजीवियों द्वारा तल्लीनता से गढ़े जा रहे थे। ऐसे में भौतिक जीवन में व्याप्त घोर निराशा के दौर में आत्मिक जगत में पलायन का रास्ता ही शेष था।

सभी वर्गों/तबकों में ऐसे लोग भारी संख्या में थे जो भौतिक जगत से उपजी निराशा, हताशा से निराश होकर आत्मिक मुक्ति की तलाश में लग गये। इसी पतन के दौर में एक तरफ भाजपा-शिवसेना मार्का साम्प्रदायिक एवं मतांधविकृत साम्प्रदायिक राजनीतिक दलों का तेजी से विकास हुआ। दूसरी तरफ, राधास्वामी सत्संग व्यास, योग वेदांत आश्रम, संत निरंकारी मण्डल, दिव्य योग मंदिर ट्रस्ट जैसी धार्मिक संस्थाओं का भी विकास हुआ। विभिन्न माध्यमों से आत्मिक मुक्ति प्रदान करने वाली इन संस्थाओं ने आम जनता को फौरी सांत्वना प्रदान की है।

भारत के पारम्परिक धर्म खास तौर से हिंदू धर्म को नये समाज के अनुरूप ढालकर रखने का कार्य इन संतों व इनकी संस्थाओं ने किया। यही कारण है कि घर के दरवाजे पर से भगवाधारी सन्यासी को काम-काज करने की सलाह देकर खदेड़ने वाले 'धर्मावलंबी' इन नव संतों के प्रभाव में आये।

पूंजीवादी विकास के अनुरूप जनमानस के विचारों, मतों व दृष्टियों में आये बदलावों के अनुरूप धर्म को पेश किये जाने की आवश्यकता को इन संतों ने बखूबी भांपा या यूं भी कहा जा सकता है कि जिस संत व संस्था की विचार-सामग्री व क्रियाकलाप इस नई चेतना व तद्नुरूप नयी 'आत्मिक' जरूरतों से मेल खाते गये वही सफल होता गया। जैसा कि हमने पहले देखा कि धर्म की स्थापना उन लोगों द्वारा की जाती थी जिन्हें जनगण की आत्मिक जरूरतों का अहसास तो होता ही था और जो स्वयं भी धर्म पर आस्था रखते थे। धार्मिक प्रस्थापनाओं के साथ मजबूती से खड़े रहते थे। परन्तु न तो सम्प्रदायों के साथ और न ही आम पतन के काल में पैदा हुई धार्मिक संस्थाओं के साथ ऐसा होता है। इस काल में धार्मिक कट्टरता एवं मतांधता विकृत तथा उथले रूप में प्रचलित हो जाती है।

ये धार्मिक संस्थाएं धार्मिक दर्शन के उथले रूप ही हैं। इनकी कुछ चारित्रिक विशेषताओं को हम देखें तो यह स्पष्ट हो जाता है।

■ इन संस्थाओं के प्रमुख भोग-विलास व मोह-माया को त्याग कर संन्यास व ब्रह्मचर्य का पालन करने की बात नहीं करते। बल्कि इनमें से कई सुखी पारिवारिक जीवन व्यतीत करते हैं। ये तो बस सांसारिक भौतिक पदार्थों का एक हिस्सा धर्म के नाम पर इनके हवाले कर देने की चाहत रखते हैं।

■ ये सभी संस्थायें हिन्दू धर्म के प्रमुख पारम्परिक संघटन जाति-व्यवस्था को सिरे से नकारते हैं। इससे भी आगे बढ़कर ये किसी धर्म-विशेष का प्रतिनिधित्व करने से भी इंकार करते हैं। यानी पारम्परिक धर्मों व जातियों के दृष्टिकोण को जिस हद तक पूंजीवाद ने कमजोर किया है ये उस जमीन पर खड़े होकर धर्म-ग्रंथों की बातों को सिर्फ किस्से-कहानियों के रूप में बांचते हैं।

■ इनमें से अधिकांश संत खुद को ईश्वर का अवतार घोषित नहीं करते और जिन्होंने ऐसा किया भी (साईं बाबा) तो प्रकारान्तर से किंतु-परंतु के साथ इसकी ऐसी व्याख्या करते हैं जिसके कई अर्थ निकाले जा सकते हैं।

■ ये संत व संस्थायें पारम्परिक धर्म ग्रंथों को जस का तस स्थापित करने का काम नहीं करते बल्कि उनको आत्मिक शांति पहुंचाने वाले किस्से-कहानियों की किताबों तक सीमित करके रखते हैं। गायत्री परिवार, जैसी संस्थायें भी 'वैदिक मानव' के निर्माण की बात करती जरूर हैं परन्तु अधिकांशतः विज्ञान की उपलब्धियों के साथ उनका सामंजस्य बैठाने के लिए बाकायदा 'शोध संस्थानों' का संचालन करती हैं। जो संस्थायें रूढ़िवादी धार्मिक मतों के साथ चिपकी रहती हैं वह उतना ही अपना आधार खोती जाती हैं। और सम्यक व्याख्या वाली संस्थाओं द्वारा प्रतिस्थापित कर दी जाती हैं। और नई पीढ़ी के बीच तो यह कतई अपना आधार नहीं बना पातीं।

■ इन सभी संस्थाओं के क्रियाकलापों का ज्यादा बड़ा हिस्सा आध्यात्म के बजाय भौतिक जगत की तात्कालिक तौर पर राहत पहुंचाने वाली कार्यवाइयों का संचालन है। मसलन परोपकार के नाम पर चलायी जाने वाली शैक्षिक संस्थायें, रक्तदाता संस्थायें, अस्पताल व अन्य सामाजिक कार्य इनके कामों का अच्छा-खासा हिस्सा हैं जो इनके भक्तगणों को यह संतुष्टि प्रदान करता है कि उनके द्वारा खर्च किया जा रहा धन 'सामाजिक' कार्यों में लग रहा है। ये संस्थायें जानती हैं कि मात्र परलोक सुधारने का झांसा देकर इहलोक में अपने 'भक्तगणों' की गिनती को बनाये नहीं रखा जा सकता। आध्यात्म के साथ विशुद्ध भौतिक फायदे के क्रियाकलापों पर यह विशेष ध्यान देते हैं। आचार्य रजनीश तो यहां तक कहते हैं कि पहले अपनी भोग विलास की सभी लालसाएं पूरी कर लो और तब आध्यात्म का मार्ग अपनाओ।

■ ये संस्थायें नानक की तरह यह कहने के बजाय की भगवान सभी ओर हैं, आध्यात्मिक क्रियाकलापों के लिए अपने आश्रमों में साप्ताहिक बैठकें व लम्बे-लम्बे शिविर चलाती हैं। इन आश्रमों में आकर इनके भक्त पूंजीवादी भागमभाग की दबाव वाली जिंदगी से अलग-थलग हो जाते हैं। कुछ समय के लिए ही सही सारे दुनियावी कारोबार से विमुक्ति पाकर ये अपना सप्ताहांत अपने लिए जीते हैं। जो स्वाभाविक तौर पर इन्हें मानसिक सुकून पहुंचाता है। यह सुकून संस्था व आध्यात्म के लिए भ्रम बन जाता है। शिविरों में यह भ्रम और ज्यादा पुख्ता हो जाते हैं।

■ आश्रम और शिविरों के ये जमघट व्यक्ति को यथार्थ की निर्दयता व निरुत्साह से दूर तो ले ही जाते हैं, साथ ही पूंजीवादी समाज की एक भयावह समस्या अलगाव का भी क्षणिक व सतही समाधान प्रस्तुत करते हैं। विभिन्न वर्गों, तबकों, धर्म, जातियों के भक्त जब एक जगह इकठ्ठा होते हैं तो उन्हें आपसी वैयक्तिक सम्बंधों के बोध का भ्रम होता है।

■ अन्य क्रियाकलापों के साथ-साथ आध्यात्म के नाम पर इनमें से कई संस्थायें सिर्फ ध्यान व योग को ही रोजमर्रा के जीवन में अपनाने की सलाह देती हैं। रामदेव की अभूतपूर्व सफलता ने लगभग सभी संस्थाओं को योग के प्रचार-प्रसार की शरण में जाने को बाध्य किया है। इनमें से ध्यान रोज निश्चित समय तक बैठकर प्रभु का स्मरण करने की विधि है। जाहिर है अगर व्यक्ति रोज एक घंटा पूंजीवादी कार्यव्यापार से अलग शांतिपूर्ण चिंतन व मंथन के लिए अपने चित्त को किसी एक विषय पर केन्द्रित करेगा तो तात्कालिक तौर पर राहत महसूस करेगा। जहां तक योग की बात है तो इसके प्रमुख झंडाबरदार रामदेव ने मध्यवर्ग के बीच ही अपना आधार हासिल किया है। इसकी वजह साफ है। अपनी रोजमर्रा की जिंदगी में खाते-पीते मध्यवर्ग के बड़े हिस्से को शारीरिक श्रम से दूर ही रहना होता है और अपनी दिनचर्या में भी अधिकांशतः ये वाहनों की गद्दियों से कुर्सियों व बिस्तरों में ही स्थानांतरित होते रहते हैं। अगर ये किसी भी शरीर संचालन की क्रिया का सप्ताह में 4-6 घंटे अभ्यास करें व अपनी भोजन की सूची में नियंत्रण रखे तो निश्चित तौर पर लाभ के भागी होंगे। जब यह ध्यान व योग एक आत्मिक शांति व परलोक सुधारने के विचार से जुड़ा होता है तो यह वर्ग ऐसा करने को प्रेरित भी होता है।

■ सभी धर्मों, जातियों व नस्लों की समानता व भाईचारे की बात करने वाली ये संस्थायें बेहद व्यावसायिक नजरिया भी रखती हैं। ये संस्थायें नये व लोकप्रिय आध्यात्मिक पैकेजों को ठीक उसी अंदाज में लपक लेती हैं जिस तरह कोई पूंजीपति अपना मुनाफा बढ़ाने के लिए नई तकनीक को। ये संत ही नहीं चंचल भक्त भी आत्मिक मुक्ति की आस में एक तरफ पारम्परिक देवी-देवताओं का भी स्मरण करते रहते हैं और इन संस्थाओं में भी इधर से उधर लुढ़कते रहते हैं।

यानी न तो इन संतों व इनकी मण्डलियों का अपने मतों, विचारों व आध्यात्मिक कार्यक्रमों के प्रति कोई दीर्घकालिक आस्था व विश्वास होता है और न ही इनके भक्तों का।

अगर साररूप में कहा जाय तो भौतिक जीवन से निराश, हताश मेहनतकश वर्गों के वास्तविक जगत से पलायन के लिए ये संस्थायें पारम्परिक धर्मों की सामग्री को नये सारतत्व से मिलाकर, मार्ग उपलब्ध कराती हैं। 21वीं सदी के भारत में मौजूदा वर्ग सम्बंधों के अनुरूप ये संत धर्म की धर्मनिरपेक्ष, भोगवादी, मानव योनि की श्रेष्ठता को स्थापित करने वाली, नागरिकता बोध अपनाने वाली, व्याख्यायें करते हैं। सभी संस्थायें मामूली फेरबदल के साथ एक से विचार व कार्यक्रम पेश करते हैं और वक्त बदलने के साथ इन विचार कार्यक्रमों की नवीनीकरण करती रहती हैं। ये संत धर्म व आध्यात्म को बस उतने तक ही प्रस्तुत करते हैं जितने तक जनमानस की चेतना स्वीकार कर सकती है। पारस्परिक धर्मों के प्रति अनुराग कभी भी इनके हाथ में कमंडल थमा देगा, ये यह अच्छी तरह जानते हैं।

अब अंत में : पूंजीवादी समाज में सभी वर्गों-तबकों में ऐसे लोग होते हैं जो भौतिक जीवन से हताश होकर आत्मिक मुक्ति की तलाश में रहते हैं। मगर शासक वर्गों के बीच इनका प्रतिशत निश्चित तौर पर काफी कम होता है। और ऐसे लोगों का प्रतिशत तो और भी कम होता है जो इन धार्मिक संस्थाओं पर विश्वास करें। अतः 'ओशो कम्यून इंटरनेशनल,' जो अपने अंतर्य में भोग-अपनी समग्र कुंठित मनोदशाओं के साथ-के बाद ही योग-ध्यान की बातें करते हैं, जैसी संस्थायें ही शासक वर्गों को आकर्षित कर पाती हैं। 'ओशो' का चिंतन ही नहीं आश्रम भी शासक वर्ग की अय्याशी के पांचतारा सुविधा सम्पन्न अड्डे ही हैं। यहां स्पा, मसाज से लेकर बड़े भव्य कमरे तक पैसे वालों की सेवा में तत्पर हैं।

शासक वर्ग के लोग खास तौर पर राजनीतिज्ञ इन संतों-संस्थाओं के साथ भी अपने सम्बंध बनाये रखते हैं जो सर्वहारा वर्ग व मध्य वर्ग के बीच अपना आधार बनाये हुए हैं। कारण 'जनता के लिए धर्म को जीवित रखा जाना चाहिए'। भौतिकवाद के बगैर पूंजीपति वर्ग का काम नहीं चल सकता। इसके लिए वह सर्वहारा व मेहनतकशों के साथ धर्मशास्त्रीय दृष्टिकोण व धार्मिक संस्थाओं के खिलाफ संघर्ष तो कर सकता है, परन्तु भौतिकवाद की पूर्ण स्थापना का अर्थ है स्वयं के विनाश के लिए उसे निमंत्रित करना।

> *"और अब ब्रिटिश भद्रता द्वारा शेष यूरोप के पूंजीपतियों के स्वतंत्र विचार तथा धार्मिक शिथिलता पर विजय पाने की घड़ी आयी। फ्रांस तथा जर्मनी के मजदूर विद्रोही हो गये थे। उन्हें समाजवाद का रोग बुरी तरह लग गया था। ऊपर उठने के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला तरीका कानूनी है कि गैर कानूनी, इसकी उन्हें पर्याप्त कारणों से खास फिक्र न रह गयी थी। यह 'मोटा-तगड़ा लड़का' दिन-ब-दिन ज्यादा 'उद्दण्ड' होता जा रहा था। फ्रांसीसी तथा जर्मन पूंजीपतियों के लिए एकमात्र चारा यही रह गया कि वे चुपके से अपने मुक्त-चिंतन का परित्याग कर दें-उस लड़के की भांति जो बड़ी शान से सिगार पीता हुआ जहाज पर आये, और जब जहाज हिचकोले खाने से मितली आने लगे तो चुपके से जलते हुए सिगार को समुद्र में फेंक दे। जो लोग पहले धर्म का मजाक उड़ाते थे, अब वे, एक-एक कर अपने वाह्य आचरण में धर्मपरायण बनने लगे, चर्च के बारे में, चर्च के जड़-विश्वासों तथा आचार-विचार के बारे में श्रद्धापूर्ण बातें करने लगे और जहां तक अनिवार्य था, उनके अनुकूल आचरण भी करने लगे। फ्रांसीसी पूंजीपति शुक्रवार को निरामिष आहार करते और जर्मन पूंजीपति रविवार को चर्च की बेंचों पर बैठकर लम्बे-लम्बे प्रोटेस्टेंट उपदेश सुनते। भौतिकवाद ने उन्हें मुसीबत में डाल दिया था। "जनता के लिए धर्म को जीवित रखा जाना चाहिए"- समाज को सम्पूर्ण विनाश से बचाने का यह एक मात्र और अन्तिम उपाय था। उनका यह दुर्भाग्य था कि उन्होंने इस बात को तभी समझा जबकि उन्होंने धर्म को हमेशा के लिए खत्म कर देने के लिए भरसक सब कुछ कर डाला था। अब अंग्रेज पूंजीपति की बारी थी कि वह हिक़ारत से हंसकर कहे, "मूर्खों, यह बात तुम्हारी समझ में अब आयी है! यह बात तो मैं तुम्हें आज से दो सौ साल पहले ही बता सकता था!" (फ्रेडरिक-एंगेल्स, समाजवादः काल्पनिक तथा वैज्ञानिक, अंग्रेजी संस्करण की भूमिका, मार्क्स-एंगेल्स की संकलित रचनाएं, तीन खंडों में, प्रगति प्रकाशन, खंड-3, भाग-1,पृष्ठ-137-138)*

पूंजीपति वर्ग धर्म को मात्र अपनी ढाल बनाता है। अभी हाल ही में जब रामदेव ने जब 'पंतजलि योग विद्यापीठ' की स्थापना की तब जहां एक ओर कांग्रेसी मुख्यमंत्री नारायण दत्त तिवारी ने उसे लगे हाथों विश्वविद्यालय का दर्जा दिया बल्कि एक दर्जन से ज्यादा भूतपूर्व व वर्तमान मंत्री (जिसमें सभी प्रमुख राजनीतिक दलों के लोग थे) इस जलसे में

शामिल थे। ये सभी रामदेव के उगते सूरज को सलाम करने पहुंचे थे। ताकि जनता के बीच भ्रमों को बढ़ावा दिया जा सके। परन्तु स्थायी तौर पर जनता को धर्म का चश्मा पहनाकर आगे बढ़ने से नहीं रोका जा सकता। जैसा कि एंगेल्स ने कहा है :

"फिर भी मुझे भय है कि न तो अंग्रेज की धार्मिक जड़ता, और न ही शेष यूरोपीय पूंजीपति वर्ग का "महफिल बिखर जाने के बाद " मत परिवर्तन सर्वहारा वर्ग के उठते हुए ज्वार को रोक सकेगा। परंपरा एक ज़बर्दस्त बाधक शक्ति है, इतिहास की जड़ शक्ति है, परन्तु केवल निष्क्रिय होने के कारण उसका नष्ट होना अवश्यंभावी है, और इसलिए धर्म स्थाई रूप से पूंजीवादी समाज की ढाल नहीं बन सकता। यदि क़ानून, दर्शन, धर्म सम्बन्धी हमारे विचार किसी समाज में प्रचलित आर्थिक सम्बन्धों की न्यूनाधिक दूरवर्ती संतानें हैं, तो अंततः ऐसे विचार इन सम्बन्धों में संपूर्ण परिवर्तन के प्रभाव से बच नहीं सकते। और यदि हम दिव्य-ज्ञान में विश्वास नहीं करते, तो हमें यह मानना होगा कि कोई भी धार्मिक सिद्धान्त किसी ढहते हुए समाज को टेक देकर गिरने से रोक पाने के लिए नाकाफी ही रहेगा।" (वही,पृष्ठ-138)

□□□